भगवान शिव कहते हैं- "हे पावर्ती! अब में सातवाँ अध्याय का महात्म्य बतलाता हूँ, जिसे सुनकर कानों में अमृत-राशि भर जाती है।

पाटिलपुऽ नामक एक दुर्गम नगर है जिसका गोपुर (द्वार) बहुत ही ऊँचा है। उस नगर में शंकुकर्ण नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसने वैश्य वृत्ति का आश्रय लेकर बहुत धन कमाया किन्तु न तो कभी पितरों का तर्पण किया और न देवताओं का पूजन ही। वह धनोपाधी जन्म तपाय राजाओं को ही भोज दिया करता था।

एक समय नहीं है। उस ब्राह्मण ने अपना चौथा विवाह करने के लिए पुत्रों और दुल्हनों के साथ यात्रा की। मार्ग में आधी रात के समय जब वह सो रहा था, तब एक सर्प ने कहा- से आकर उसकी बाँह में काट दिया। उसके काटते ही ऐसी समस्या हो गई कि मणि, मन्त्र और आयुष्मन आदि से भी उसके शरीर की रक्षा असाध्य जान पड़ी।

तत्पथात कुंभ खण्ड हुए में उसके प्राण पश्चे उड़ गये और वह प्रेत बना। फिर बहुत समय के बाद वह प्रेत सर्पयोगिनि में उत्पन्न हुआ। उसका विच धन की वासना में बँधा था। उसने पूर्व वृत्तत को स्मरण करके सोचा-

''मैंने घर के बाहर करोड़ों की संख्या में अपना जो धन गाड़ रखा है उससे इन पुत्रों को बंधित करने के स्वयं ही उसकी रक्षा करूँगा।''

साँप की योग्य से पीड़ित होकर दुल्हन ने एक दिन स्वप्न में अपने पुत्रों के समक्ष आकर अपना मनोभाव बताया। तब उसके पुत्रों ने सवेरे उठकर बड़े विस्मय के साथ एक-दूसरे से स्वप्न की बातें कही। उन्में से मंगलजल पुत्र कुदाल हाथ में लिये घर से लिकल और जहाँ उसके पिता सर्पयोगिनि धारण करने लगे रहते थे, उस स्थान पर गया। यथापि उसे धन के स्थान का ठीक-ठीक पता नहीं था तो भी उसने चिंताओं से उसका ठीक लिख्य कर लिया और लोभुन्दु से दो सप्तदिनयक बाँसी को खोदना आरम्भ किया। तब उस बाँसी से बड़ा भयानक साँप प्रकट हुआ और बोला:
'ओ मुढ़ ! तू कौन है? किसलिए आया है? यह चित क्यों खोद रहा है? किसने तुझे भेजा है? ये सारी बाते मेरे सामने बता।'

पुत्र: "मैं आपका पुत्र हूँ। मेरा नाम शिव है। मैं रात्रि में देखा हुए स्वप्न से विस्मित होकर यहाँ का सुवर्ण लेने के कौतुहल से आया हूँ।"

पुत्र की यह वाणी सुनकर वह साँप हाँसता हुआ उच्च स्वर से इस प्रकार स्पष्ट वचन बोला: "यदि तू मेरा पुत्र है तो मुझे शीघ्र ही बन्धन से मुक्त कर। मैं अपने पूर्वजनम के गाड़े हुए धन के ही लिए सर्पयोगी में उत्पन्न हुआ हूँ।"

पुत्र: "पिता जी! आपकी मुक्ति कैसे होगी? इसका उपाय मुझे बताईये, क्योंकि मैं इस रात में सब लोगों को छोड़कर आपके पास आया हूँ।"

पिता: "बेटा ! गीता के अमृतमय साम अध्याय को छोड़कर मुझे मुक्त करते मैं तीर्थ, दान, तप और यज्ञ भी सर्वथा समर्थ नहीं हैं। केवल गीता का सातवां अध्याय ही प्राणियों के जरा मृत्यु आदि दुःखों को दूर करते वाला है। पुत्र ! मेरे श्रद्ध के दिन गीता के समान अध्याय का पाठ करते वाले श्रद्धाग्रस्त भोजन कराओ। इससे ति:निदेश मेरी मुक्ति हो जायेगी। वर्तमान अभिक के अनुसार पूर्ण श्रद्धा के साथ निदर्शनी और वेदविया में प्रवीण अन्य श्रद्धाएँ को भी भोजन कराना।"

सर्पयोगी में पड़े हुए पिता के ये वचन सुनकर सबी पुत्रों ने उसकी आजानुसार तथा उससे भी अधिक किया। तब शिकुकरण ने अपने सर्पधीर को त्यागकर दिव्य देख धारण किया और सारा धन पुत्रों के अहुल कर दिया। पिता ने करोड़ों की संख्या में जो धन उनमें बॉट दिया था, उससे वे पुत्र बहुत प्रसन्न हुए। उनकी बुद्धि धर्म में लगी हुई थी, इसलिए उन्होंने बालवी, कुआं, पोखरा, यज्ञ तथा देवमंदिर के लिए उस धन का उपयोग किया और अल्पशाला भी बनवायी। तत्प्रथात उन सातवें अध्याय का सदा जप करते हुए उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया।

हे पावर्ती ! यह तुम्हें सातवें अध्याय का महात्म्य बतलाया, जिसके श्रवणमात्र से मानव सब पातकों से मुक्त हो जाता है।"

(अनुक्रम)

सातवाँ अध्यायः ज्ञानविज्ञानयोग

|| अथ ससमोऽध्यायः ||

श्री भगवानुवाच

महायातमकमना: पार्थ योगें युजनमदश्रयः।

असंशयं समग्रं मा यथा जाज्ञसिसं तत्त्वंतः।
श्री भगवान बोले: हे पार्थ! मुझमें अनन्य प्रेम से आसक हुए मनवाला और अनन्य भाव से मेरे परायण होकर, योग में लगा हुआ मुझको संपूर्ण विभूति, यत ऐश्वर्यदि गुणों से युक्त सबका आत्मन्त्र जिस प्रकार संशयरहित जानेगा उसको सुन। (1)

जानन तेस्वं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषत:।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमविशंयते॥ ॥

मैं तेरे लिए इस विज्ञान सहित तत्त्वज्ञान को संपूर्णता से कहूँगा कि जिसको जानकर संसार में फिर कुछ भी जानने योग शैष नहीं रहता है। (2)

मनुष्याणां सहस्रेशु कथिष्ठतिः सिद्धाय।
यततामिप सिष्यायेः किंसये॥ ॥

हजारो मनुष्यों में कोई एक मेरी प्राप्ति के लिए यहत करता है और उन यत्न करने वाले योगियों में भी कोई ही पुष्ट मेरे परायण हुआ मुझको तत्व से जानता है। (3)

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिसुव।
अहंकार इतियं मे भन्ना प्रकृतिरथ:॥ ॥

अपरेयिमत:त्वन्यां भूकृतं िविः मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो यथेऽ धार्यते जगत्।॥ ॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश और मन, बुद्धि एवं अहंकार... ऐसे यह आठ स्त्रकार से विभिन्न हुई मेरी प्रकृति है। यह (आठ प्रकार के भेदों वाला) तो अपरा है अर्थात मेरी जड प्रकृति है और हे महाबाहों। इससे दूसरी को मेरी जीवभूता परा अर्थात चेतन प्रकृति ज्ञात कि जिससे यह संपूर्ण जगत धारण किया जाता है। (4,5)

एतोनीिन भूतान्ति सर्वाणृिनाय ययः।
अहं कृत्वं जगत: प्रभव: प्रलयस्तथ:॥ ॥

मतः परतरं नान्यतिक्षिप्तिः धनंजय।
भवि सविनिद्ध मोतं सुकृतं मणिगणां इव॥ ॥

हे अर्जुन! तू ऐसा समझ कि संपूर्ण भूत स्त्रकार दोनों प्रकृतियों (परा-अपरा) से उत्पन्न होने वाले हैं और में संपूर्ण जगत की उत्पत्ति तथा प्रलयरूप हूँ अर्थात संपूर्ण
जगत का मूल कारण हूँ। हे धनंजय! मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण सूत्र में मणियों के सदर मुझमें गुप्त हुआ है। (6,7)

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रमाण्यसम्बंधित सूजयोऽ।
प्रणयः सर्वंबेदी शब्दः न्योऽ पौर्णम मृत्।
पुण्यो गत्यः पृथिवियां च तेजस्विनाय विबधासी।
जीवनं सर्वभूतोऽ तपस्विनाय तपस्विनाय।
हे अजुर्न! जल में मैं रस हूँ। चंभा और सूर्य में मैं प्रकाश हूँ। संपूर्ण वेदों में प्रणव(ॐ) मैं हूँ। आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व मैं हूँ। पृथ्वी में पवित्र गंध और अजि में मैं तेज हूँ। संपूर्ण भूतों में मैं जीवन हूँ अर्थात् जिससे वे जीते हैं वह तत्व मैं हूँ तथा तपस्वियों में तप मैं हूँ। (8,9)

बीज मां सर्वभूतानां विद्यमान पार्थ सनातनम्।
बुद्धिभुदिता तमस्तु तेजस्विनाय तपस्विनाय।
हे अजुर्न! तू संपूर्ण भूतों का सनातन बीज यानि कारण मुझे ही जान। मैं बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज हूँ। (10)

बलं बलवतां चाहं कामरागिवविजर्तम्।
धर्माविरुद्धो भूतेऽ पुरुषोऽ कामोऽभावः करऽ भरतस्वर्भोऽ।
हे भरत! आसि और कामनाओं से रहित बलवानों का बल अर्थात् सामथ्र्य मैं हूँ और सब भूतों में धर्म के अनुकूल अर्थात् शास्त्र के अनुकूल काम मैं हूँ। (11)

ये चैव सातित्रिक ब्रजा राजसात्तामसाप्त ये।
मत एवेति तानियत्विद्वेषः न त्वेऽ तेशु ते मधि।
और जो भी सत्मुखृण्ड्र सेव ऊत्पन्न होते वाले भाव हैं और जो रजोगुण से तथा तमोगुण से ऊत्पन्न होते वाले भाव हैं, उन सब को तू मेरे से ही होने वाले हैं ऐसा जान। परन्तु वास्तव में उनमें मैं और वे मुझमें नहीं हैं। (12)

त्रिभुगुणमनाभीवर्तिताः सर्वं मृत्यु जगत।
मोहितं नाभिजानाताः मामेन्म् परमम्भुम। (13)
गुणों के कार्यरूप (सात्विक, राजसिक और तामसिक) इन तीनों प्रकार के भावों से यह सारा संसार मोहित हो रहा है इसलिए इन तीनों गुणों से परे मुझ अविनाशी को वह तत्त्व से नहीं जानता। (13)

देवी ब्रह्मा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपणन्ते मायामतां तरतत्ति ते।।14।।

यह अलौकिक अर्थात् अति अदभुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुःस्तर है परन्तु जो पुरुष केवल मुझको ही निरंतर भजते हैं वे इस माया को उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसार से तर जाते हैं। (14)

न मां दुष्कृतिनो भुजः प्रपणन्ते नराधमः।
माययापहृतज्ञानां आसुरं भावमािौताः।।15।।

माया के द्वारा हरे हुए जानवाले और आसुर स्वभाव को धारण किये हुए तथा मनुष्यों में नीच और दुरस्त करनेवाले मुझ लोग मुझे नहीं भजते हैं। (15)

चतुर्वर्धा भजन्ते मां जनाः सुकृतनोऽजुर्न।
आतीजज्ञासुरथार्थीं ज्ञानी च भरतमभ।।16।।

हे भरतंवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्मवाले अर्थात्, आर्त, जिज्ञासु और जानी – ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मुझे भजते हैं। (16)

तेषां जानी नित्ययुक एकभक्तिरिविशिष्यते।
प्रियो हि जानिनोऽत्यर्थसं च मम प्रियः।।17।।

उनमें भी नित्य मुझमें एकीभाव से स्थित हुआ, अनन्य प्रेम-भक्तिवाला जानी भक्त अति उत्तम है क्योंकि मुझे तत्त्व से जानने वाले जानी को मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और यह जानी मुझे अत्यंत प्रिय है। (17)

उदारः सर्व एवैते जानी त्यातस्कृत में मतम्।
आस्थितः स हि युकाद्या मामेवानुत्तमां गतिम्।।18।।

ये सभी उदार हैं अर्थात् श्रद्धासहित मेरे भजन के लिए समय लगाने वाले होने से उत्तम हैं परन्तु जानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही हैं ऐसा मेरा मत है। क्योंकि वह मदगत मन-बुद्धिवाला जानी भक्त अति उत्तम गतिस्वरूप मुझमें ही अच्छी प्रकार स्थित है। (18)
बहूनां जन्मनामायं जानवनामां प्रपाधते ।
वासुदेवः सर्वप्रिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥१९॥

बहुत जन्मों के अन्त के जन्म में तत्वज्ञान को प्राप्त हुआ जानी सब कुछ वासुदेव ही है- इस प्रकार भूल भजता है, वह महात्मा अंति दुर्लभ है। (१९)

कामस्तैत्त्रेतायाः प्रथयाँ वदेवताः ।
तं तं नित्यममाल्य प्रकृत्या नित्याः स्वयम् ॥२०॥

उन-उन भोगों की कामना द्वारा जिनका जान हरा जा चुका है वे लोग अपने स्वभाव से प्रेरित होकर उस-उस नियम को धारण करके अन्य देवताओं को भजते हैं अर्थात् पूजते हैं। (२०)

यो यो या याण तनुं भक्तं श्रद्धायारिचितमिचिछति ।
तत्स्वयं सत्तानां श्रद्धां तामेव विद्याम्बहम् ॥२१॥

जो-जो सकाम भक्त जिस-जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है, उस-उस भक्त की श्रद्धा को में उसी देवता के प्रति स्थिर करता हैं। (२१)

स तया श्रद्धा युक्तस्वयं रात्रिधारनमहते ।
लभते च ततः कामान्यायेव विहितान्ति तान् ॥२२॥

वह पुरुष उस श्रद्धा से युक्त होकर उस देवता का पूजन करता है और उस देवता से मेरे द्वारा ही विधान किये हुए उन इच्छित भोगों को निःसन्देह प्राप्त करता है। (२२)

अन्तयतु फलं तेषां तदन्तयन्त्रमयंधसाम् ।
देवान्देवायो यान्ति उद्दज्ञा यान्ति मामिप। ॥२३॥

परन्तु उन अल्प बुद्धिवालों का वह फल नाशवान है तथा वे देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त चाहे जैसे ही भजें, अंत में मुझे ही प्राप्त होते हैं। (२३)

अव्यक्तं विद्यकिमापत्तं मनंत्ते मामबुद्वयः ।
परं भावम्रजानन्तो ममाभ्यममुत्तमम् ॥२४॥
बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुतम, अविनाशी, परम भाव को न जानते हुए, मन-इन्द्रयों से परे मुझ सचिविद्यानबरत परमात्मा को मनुष्य की भावता जानकर व्यक्ति के भाव को प्राप्त हुआ मानते हैं। (24)

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूदोस्यं नामिज्ञानाति लोको मामजमव्ययम्।।25।।
अपनी योगमाया से छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता इसलिए यह अजानी
जन समुदाय मुझ जन्मरति, अविनाशी परमात्मा को तत्त्व से नहीं जानता है अर्थात्
mुझको जन्मने-मरनेवाला समझता है। (25)

वेदाहं समतीतानि यत्मातिनि चार्जुनः।
वभव्याणि च भूतानि मां तु वेद न कथन।।26।।

हे अजुर्न! पूर्व में व्यतीत हुए और वर्तमान में स्थित तथा आगे होलेवाले सब भूतों
को मैं जानता हूँ, परन्तु मुझको कोई भी श्रद्धा-भक्तिरहित पुरुष नहीं जानता। (26)

इच्छाद्रेष्टसमुदायं द्वन्दमोहेन भारत।
सर्वभूतानि संस्कृतं संस्कृतिः यान्ति परंतप।।27।।

हे भरतवंशी अजुर्न! संसार में इच्छा और द्रष्टा से उत्पन्न हुए सुख-दुःखादि
द्वन्द्रुप मोह से संपूर्ण प्राणी अति अजानता को प्राप्त हो रहे हैं। (27)

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्दमोहिनिमुक्ता भजन्ते मां द्रवर्तता।।28।।

(निष्काम भाव से) श्रेष्ठ कर्मो का आचरण करने वाला जिन पुरुषों का पाप नष्ट हो
गया है, वे राग-देशादिजनित द्वन्द्रुप मोह से मुक्त और द्रढ निष्क्रियवाले पुरुष मुझको भजते
हैं। (28)

जरामरणमोक्षाय मामाश्चिर्य यत्त्वति ये।
ते ब्रह्म तद्विभु: कृत्सनमध्यानमं कर्म चार्जिलम्।।29।।

जो मेरे शरण होकर जरा और मरण से छूटने के लिए यत्न करते हैं, वे पुरुष उस
ब्रह्म को तथा संपूर्ण अध्यात्म को और संपूर्ण कर्म को जानते हैं। (29)
अथार्त् मुझे होते ह। (30)
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

इस उपनिषद्, योगशास्त्र तथा भगवदगीता में श्रीकृष्ण तथा अर्जुन के संवाद में 'ज्ञानिवज्ञान योग नामक' सातवाँ अध्याय संपूर्ण।
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ